डुग्गर प्रदेश के लोकनाच – एक सर्वेक्षण

❑ डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स

जम्मू-कश्मीर राज्य के जम्मू संभाग-जो डुग्गर प्रदेश नाम से भी जाना जाता है- में लोक संस्कृति की अत्यन्त समृद्ध थाती है। इस प्रदेश में लोक वार्ता के वैसे तो सभी अंग बड़े समृद्ध हैं, परन्तु लोकनाच अपने विविध भेदों से यहां के लोक मानस की अभिरुचि को सम्भवतः प्रागैतिहासिक समय से सन्तुष्ट करता आ रहा है।

लोक नाचों की विविधता को हम इस प्रदेश की भौगोलिक अवस्था को दृष्टिगोचर करते हुए इन तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं –

1. पर्वतीय प्रदेश के लोक नाच :-

(क) ढेकू लोकनाच (कुड्ड नाम से प्रसिद्ध)

(ख) डांगी या घुरेई लोकनाच

(ग) गद्दी लोकनाच

(घ) सुहार लोकनाच

(ङ) सोहाड़ी लोकनाच

(च) गोजरी लोकनाच

2. मध्यवर्ती प्रदेश के लोकनाच :-

(क) फुम्मनी लोकनाच

(ख) चौकी लोकनाच

(ग) कीकली लोकनाच

(घ) धमचड़ा लोकनाच

(ङ) छज्जा लोकनाच

3. निम्न प्रदेश के लोकनाच :-

(क) भांगड़ा लोकनाच

(ख) गिद्दा लोकनाच

1. पर्वतीय प्रदेश के लोकनाच :-

(क) ढेकू लोकनाच (कुड्ड लोकनाच)

पर्वतीय प्रदेश के लोकनाचों में ढेकू लोक नाच का प्रमुख स्थान है। इसे लोक कुड्ड नाम से भी पुकारते हैं, पर वस्तुतः पर्वतीय बोली में कुड्ड एकत्र होने को कहते हैं। इसलिए क्योंकि ढेकू नृत्य के समय बहुत लोग एकत्र होते हैं अतः ढेकू नृत्य का दूसरा नाम कुड्ड भी पड़ा गया। जो इस नृत्य के असली नाम ढेकू से भी अधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गया।

यह लोकनृत्य समग्र-विस्तृत पर्वतीय प्रदेश के भद्रवाह, भलेसा, डोडा, आरनास, रियासी, पंचैरी, सुबाधार, वासक देहरा, गाठा, मथोरा, चेका, ग्वालो, नन्दना तथा खंगल आदि गाँवों में अति प्रसिद्ध है।

भद्रवाह प्रदेश ऊंचे-ऊंचे पर्वतों से घिरा हुआ है। ये पर्वत देवदार के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों तथा शिखरों पर सदा बर्फ की सफेद चादर बिछी रहने से बड़े मोहक प्रतीत होते हैं। इस प्रदेश के अत्यन्त मोहक प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही इसे छोटा कश्मीर भी कहते हैं।

वस्तुतः सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश की यह विशेषता है कि यहां के रीति-रिवाज, लोकनाच सांस्कृतिक परम्पराएं, लोगों में आतिथ्य भाव की पुख्ता नींव और यहां के स्थानीय मेले और त्योहार- अपना पृथक् स्थान रखते हैं। इस प्रदेश के लोगों के धार्मिक नृत्यों में ढेकू नृत्य की प्रमुख भूमिका रहती है। यह नृत्य अत्यन्त रूचिकर होने से लोगों का मनोरंजन करने के लिए सराहनीय योगदान करता है। प्रायः यह नृत्य चौंडा माता, ढोल, जलसर और भीं नामक लोक-देवों को प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य विवाह आदि शुभ संस्कारों का आयोजन करते समय भी प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त फसल बोने पर या फसल तैयार हो जाने पर उसे काटने के बाद भी प्रसन्नता की अनुभूति का प्रदर्शन करने पर भी प्रस्तुत किया जाता है। उस समय क्योंकि किसान अपने आपको सब प्रकार से चिन्तामुक्त अनुभव करते हैं, अतः उस समय इसकी प्रस्तुति और भी विशेष आनन्द देने वाली होती है।

भद्रवाह क्षेत्र में इसके दो रूप हो जाते हैं - 1. साधारण ढेकू और 2. मेला-पट ढेकू। साधारण ढेकू मुख्यत: शीत ऋतु में आग जलाकर रात के समय प्रस्तुत किया जाता है, जबकि मेला-पट-ढेकू भाद्रपद मास में श्री कृष्ण जन्माष्टमी के बाद अमावस्या के बाद भद्रवाह के सेरी बाजार के पास खख्खलनौन के मैदान में दिन के समय प्रस्तुत किया जाता है।

इस नृत्य को प्रस्तुत करने के लिए पचास से साठ व्यक्तियों (केवल पुरूष) की टोली होती है। जो एक जैसे पहनावे में सजे होते हैं। पगड़ी तो सभी के सिर पर होती ही है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी की कमर में एक मोटा कपड़ा बांधा होता है। कई व्यक्ति अपने पैरों में घुंघरू भी बांध लेते हैं ताकि नृत्य की थाप और ढोल की चित्ताकर्षक ध्वनि के साथ ये भी अपनी कर्णमधुर ध्वनि से वातावरण में एक विशेष प्रकार का उल्लास उत्पन्न कर सकें। यदि ढेकू चाँदनी रात के समय प्रस्तुत किया जाए तो दर्शकों के मन में असीम आनन्द अनुभव होने लगता है क्योंकि एक तो शीत ऋतु की ठंडी रात और फिर धरती पर जलाई हुई तेज भड़कती आग के उठते शोले तथा आसमान पर चमकता चाँद इस नृत्य की गरिमा को और अधिक बढ़ा देते हैं। ऐसे वातावरण में ढोल की थाप, बांसुरी की मधुर-सुरीली ध्वनि तथा अन्य वाद्य-यन्त्रों की ध्वनियों के बीच यह नृत्य आरम्भ होता है तो दर्शक भाव-विभोर होकर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं।

नर्तक सर्वप्रथम ज्वलित अग्नि की भूमिका के चारों ओर घेरा बना कर खड़े हो जाते हैं और ढोल की पहली थाप के साथ ही नृत्य मुद्रा में अपने-अपने पग धीरे-धीरे आगे बढ़ाने लगते हैं जो क्रमश: बांसुरी आदि अन्य वाद्य यन्त्रों के साथ बजते ही तेज होने लगते हैं। ये नर्तक-जिन में सभी आयु वर्ग के लोग होते हैं - बड़े ही संयम और अनुशासन में बंधकर इस नृत्य को प्रस्तुत करते हैं। रात भर चलने वाले इस नृत्य की गति कहीं प्रात: काल में पहुँच कर ही तेज होती है। विचित्र बात तो यह है कि इस नृत्य को देखने के लिए दूर-दूर से आए हुए दर्शक भी रात भर जागकर इस नृत्य का आनन्द लूटते हैं।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यह नृत्य इन तीन अवस्थाओं में प्रस्तुत किया जाता है- 1. धिन चोन ते, धिन, चोन यह पाँच मात्राओं में होती है। इस अवस्था में नृत्य की गति बहुत धीमी होती है।

2. ताल आवस्था- इस में नर्तकों के पाँव तेज गति से नाचते हुए चक्र में आगे बढ़ते चलते हैं और 3. तीसरी ढेकू अवस्था में पाँवों की गति बहुत तेज हो जाती है और ऊंचे किए हुए हाथ भी तेजी से ताल की मुद्रा में हिलने लगते हैं।

ढेकू की दूसरी अवस्था मेला-पट-ढेकू है। यह दिन के समय प्रस्तुत किया जाता है। दूसरा क्योंकि भाद्रपद मास में किया जाता है इसलिए मौसम भी अपेक्षाकृत गर्म होने के कारण आग जलाए बिना ही किया जाता है। इसे मेला पट इसलिए कहते हैं कि मुगल सम्राट अकबर के समय भद्रवाह के राजा नागपाल ने उसके दिल्ली दरबार में अपना विशेष प्रभाव दिखाया था तो अकबर ने प्रसन्न होकर उसे कीमती स्वर्णाभूषणों और रेशमी वस्त्रों से सम्मानित किया था। राजा नागपाल सम्मानित होकर जब भद्रवाह पहुँचा तो लोगों ने उसका भव्य स्वागत किया था। राजा को मिली हुई उन वस्तुओं में से आभूषण आदि आज तक सुरक्षित नहीं रह सके हैं, पर वस्त्र (पट) आज तक भी भद्रवाह के एक देव स्थान में सम्भाल कर रखे हुए हैं। उन्हीं वस्त्रों को एक गगरी में लपेट कर एक देवी भक्त उसे सिर पर उठा कर नर्तकों के द्वारा बनाए हुए घेरे के मध्य में नाचता है और शेष नर्तक उसके चारों ओर नचाते हैं। नाचने का ढंग साधारण ढेकू के समान ही तीन अवस्थाओं में होता है।

(ख) घुरेई लोकनाच

यह लोक नाच भी ढेकू लोक नाच का ही एक भेद है। यह नृत्य भी पर्वतीय प्रदेश में अति प्रसिद्ध है परन्तु इतना अवश्य है कि यह नृत्य केवल स्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य के प्रस्तुति-करण के अवसर पर एक भी वाद्य यन्त्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। हां, उस समय घुरेई नामक लोक गीत अवश्य गाया जाता है। इस नृत्य के सम्बन्ध में यह नियम बड़ा ही पक्का है कि इसका प्रस्तुतिकरण केवल सधवा स्त्रिओं द्वारा ही किया जाता है। इसीलिए इसे सुहाग वृद्धि का प्रतीक माना जाता है। 'कनचोथी'[१] त्योहार के समय तो यह नृत्य अवश्य ही प्रस्तुत किया जाता है। यह त्योहार जम्मू संभाग के भद्रवाह और भलेस क्षेत्र में विशेष रूप से अधिक प्रचलित है। इन क्षेत्रों में तो विवाह तथा अन्य शुभ एवं मांगलिक कार्यों के समय यह नृत्य अनिवार्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि क्योंकि 'कनचोथी' त्योहार केवल हिन्दु परिवार की स्त्रियां ही मनाती हैं, इसलिए 'घुरेई' नृत्य भी वे ही प्रस्तुत करती हैं। इस त्योहार वाले दिन सधवा स्त्रियां व्रत रखती हैं स्वच्छ और सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहन कर इकट्ठी होकर पार्वती माता की विधि पूर्वक पूजा अर्चना करके उससे अपने सुहाग की अक्षुण्णता के लिए प्रार्थना करती हैं। भजन-आरतियां गाती हैं और फिर यह नृत्य प्रस्तुत करती हैं। इस नृत्य का प्रारम्भ भी बड़ी धीमी गति से होता है और धीरे-धीरे गति पकड़ता है। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि

१. *करक चतुर्थी त्योहार के साथ मिलता जुलता तथा सधवा स्त्रियों की सुहाग वृद्धि का प्रतीक।*

यह नृत्य भी ढेकू नृत्य के समान गोल चक्र बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि नृत्य प्रस्तुत करने वाली स्त्रियां विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सजी होती हैं, अत: नृत्य के समय दृश्य बड़ा ही मनमोहक बन जाता है, विशेष रूप से उनके आभूषणों की छन-छन एवं गुन-गुन ध्वनि तो चित्त को असीम आनन्द की दुनिया में पहुँचा देती है।

गद्दी जाति और उसके लोकनाच

पर्वतीय क्षेत्र (हिमाचल और जम्मू कश्मीर के संभाग) में गद्दी जाति का विशेष स्थान है। ये लोग भी गूजरों के समान घुमन्तु होते हैं, अर्थात् ये लोग गर्मी की ऋतु में अपनी भेड़ों के साथ पर्वतीय क्षेत्र के ठण्डे स्थानों में चले जाते हैं। जब कि शीत ऋतु में मैदानी क्षेत्र में आ जाते हैं। इतना अवश्य है कि गूजरों की अपेक्षा पर्वतीय प्रदेश के गाँवों में इनकी थोड़ी-थोड़ी जमीन भी होती है, जिसमें इन्होंने अपने घर बनाए होते हैं। अत एव ये लोग गूजरों के समान अपनी गृहस्थी उठाकर स्थानान्तरित नहीं होते हैं। जब शीत ऋतु में ये अपनी भेड़ों के साथ मैदानी प्रदेश की ओर प्रस्थान करते हैं, तो इनके घरों में परिवार का एक सदस्य अवश्य ही रह जाता है, जो पीछे से घर की सुरक्षा भी करता है और खेतों में कृषि-कार्य भी करता है।

जो गद्दी परिवार के सदस्य मैदानी प्रदेश को चले जाते हैं वे उनके साथ अपनी पत्नियों, जिन्हें गद्दिन कहते हैं, को भी ले जाते हैं।

ये लोग अधिकतर ऊन से निर्मित वस्त्र ही पहनते हैं। और अपनी कमर में ऊन के रस्से बांधे रखते हैं। ये यद्यपि बड़े ऊंचे लम्बे जवान होते हैं, प्राय: स्वभाव से सरल और निष्कपट होते हैं। ये लोग गाँवों के पास खेतों में वृक्षों के नीचे अपना डेरा डालते हैं।

क्योंकि ये लोग हिन्दू धर्म के साथ सम्बन्ध रखते हैं अत: ये भी आम हिन्दुओं के समान हिन्दू देवों की पूजा-आराधना करते हैं, यद्यपि उनमें शिव, दुर्गा का स्थान प्रमुख रहता है। इनके अतिरिक्त स्थानीय लोक देवता भी इनकी पूजा-पद्धति में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

इनके लोक नृत्य चार प्रकार के होते हैं -

1. साधारण नाच
2. डांगी या घुरेई लोक नाच

3. गिद्दा लोक नाच
4. सामूहिक या डण्डारस नाच

साधारण नाच - यह दो प्रकार का होता है।

1. जब कभी त्योहार होता है तो गद्दी लोग खुले मैदान में एकत्र हो जाते हैं। इनमें से दो या इससे अधिक आगे आकर अञ्जली-नामक लोक गीत गाने लगते हैं और इसके तुरन्त बाद दो या इससे अधिक व्यक्ति आगे आकर नाचने लगते हैं। जो अञ्चली गाते हैं उन्हें 'बन्दे' कहते हैं। उनके हाथ में ढोल आदि बाद्य यन्त्र होते हैं, जिन्हें बजाने में उन्हें प्रवीणता प्राप्त होती है। इनके अञ्जली गीत में राम और शिव की महिमा का वर्णन होता है।

नाच करने वाले जब अञ्जली गीत और वाद्य यन्त्रों की ध्वनियों के साथ अपना नाच प्रस्तुत करते हैं तो देखने वाले मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं।

2. दूसरे प्रकार का साधारण नाच पहले की अपेक्षा अधिक अनुशासन-बद्ध एवं सुनियोजित ढंग का होता है। इस नाच को चक्राकार स्थिति में आकर प्रस्तुत किया जाता है। यह नाच ढेकू नाच के साथ मिलता-जुलता है। नाच करते समय नर्तक पहले अपने हाथ ऊपर की ओर उठाते हैं और फिर धीरे-धीरे भूमि की ओर ले जाते हैं। यद्यपि पुरूष और महिलाएं इस नृत्य को एक साथ प्रस्तुत करती हैं फिर भी वे एक दूसरे से अन्तर बनाए रखती हैं। इस नृत्य की यह बड़ी विशेषता है कि पुरूष और महिलाएं यद्यपि इसे मिल-जुलकर प्रस्तुत करती हैं तो भी इनकी नाच की पद्धति अलग-अलग होती है। जबकि पुरूष पूरे नृत्य काल में एक ही ढंग से नाचते रहते हैं, पर महिलाएं बड़े ही कोमल अन्दाज में कभी उठकर तो कभी बैठकर नृत्य की मुद्राएं बनाती हुई नृत्य का प्रदर्शन करती हैं। और बीच-बीच में अपने हाथों की अंगूरों के गुच्छे के समान मुद्राएं बनाती हैं।

डांगी या घुरेई लोक नाच -

वास्तव में डांगी और घुरेई परस्पर पर्यायवाचक हैं, अत: यह समझना चाहिए कि डांगी और घुरेई एक ही नृत्य के दो नाम हैं। क्योंकि यह नृत्य घुरेई त्योहार पर भी प्रस्तुत किया जाता है इसलिए इसका घुरेई नाम भी प्रसिद्ध हो गया।

यह नृत्य केवल महिलाओं द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य के समय वे पूरे चक्राकार या अर्ध-चक्राकार की स्थिति खड़ी होती हैं और घुरेई लोक

गीत गाती हैं। पहले दो या तीन स्त्रियां ही गाती हैं और फिर चक्राकार में खड़ी अन्य स्त्रियां भी गाना आरम्भ कर देती हैं। और उसके तुरन्त बाद नृत्य में मगन हो जाती है। उस समय उनका नाचना बड़ा ही नाटकीय प्रतीत होता है। नाचती हुई वे मध्य-मध्य में एक दूसरी के हाथ भी पकड़ती जाती हैं। वे नाचती हुई प्रायः सुन्नी और भिक्खू की प्रेमगाथा ही गाती हैं। गद्दी महिलाओं का यह नाच अपने ही ढंग के निराला होने से अन्य जाति वालों को बड़ा आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

गद्दी लोक नाच -

क्योंकि गद्दी महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला गिद्दा भी पञ्जाबी गिद्दा जैसा ही होता है, इसलिए हम इसे पञ्जाबी गिद्दा की ही नकल मानते हैं।

सामूहिक या डण्डारस नाच -

यह नाच भी गद्दी लोगों में बड़ा लोक प्रिय है। यह एक प्रकार से कलात्मक लोक नृत्य है। यह नृत्य पुरूषों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य को प्रस्तुत करने वालों के साथ जो वाद्य यन्त्र बजाते हैं उन्हें 'बजन्तरी' कहते हैं। वे एक कोने में बैठ जाते हैं और अपने वाद्य यन्त्र बजाना आरम्भ कर देते हैं। वाद्य यन्त्रों में मुख्यतः ढोल, नगारा और शहनाई सम्मिलित होती है। वाद्य यन्त्र बजाते समय वे अत्यन्त मधुर गीत भी गाते चलते हैं।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि नृत्य करने वाले सभी नर्तकों का पहरावा सर्वथा एक जैसा होता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ चाँदी के आभूषण भी पहने होते हैं। उनका नृत्य आरम्भ में बड़ी ही धीमी गति से चलता है। ज्यों-ज्यों ढोल तथा अन्य वाद्य यन्त्रों की धुन में गति आती चलती है त्यों-त्यों नर्तकों के पाँवों की थिरकन भी बढ़ती चलती है। उनके पाँव पूर्ण अनुशासन के साथ एक साथ उठते हैं और एक साथ ही ज़मीन पर पड़ते हैं। जब नृत्य अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है तब वाद्य यन्त्र भी ऊँचे-ऊँचे स्वर निकालते हैं। उस समय एक विचित्र प्रकार का वातावरण बन जाता है। बच्चे, बूढ़े और युवक सभी इस नृत्य का आनन्द लूटते हुए भाव विभोर हो जाते हैं।

(घ) सुहार लोक नाच :-

यह लोक नाच जम्मू संभाग के जिला डोडा की किश्तवाड़ तहसील के अन्तर्गत पाडर क्षेत्र में बड़ा लोक प्रिय है। क्योंकि यह लोक नाच वहां के लोगों

की धार्मिक भावना के साथ जुड़ा हुआ है इसलिए यह उन लोगों का एक प्रकार से पवित्र लोक-नृत्य है।

पाडर क्षेत्र के लोग जहां बड़े धार्मिक है वहां बड़े सादा और सरल स्वभाव के हैं। ये लोग पाडरी बोली बोलते हैं जो भद्रवाही बोली समूह के साथ सम्बन्धित है। इनके सुहार नाच में भी कोई तड़क भड़क न होकर सादगी की स्पष्ट झलक मिलती है। यद्यपि यह नाच उनकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्परा के साथ जुड़ा हुआ है तो भी इसका सम्बन्ध उनके सामाजिक जीवन के साथ भी कम नहीं है। इसलिए यदि हम इस नाच को सामाजिक-धार्मिक (Socio-religious) नृत्य कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

इस नाच में लगभग 15 नर्तक भाग लेते हैं। यह या तो वैशाखी के त्योहार के समय प्रस्तुत किया जाता है या फिर देवार 'जागर' और 'मुग्ध' त्योहार के समय पेश किया जाता है। देवार त्योहार वैशाखी के सात दिनों के बाद प्रस्तुत किया जाता है। 'जागर' त्योहार नवम्बर-दिसम्बर में मनाया जाता है। इस त्योहार के समय भी यह नाच प्रस्तुत किया जाता है, पर तीन-वर्षों के बाद ही प्रस्तुत किया जाता है। वास्तव में सुहार नाच वहां लोगों द्वारा स्थानीय देवी नैनी या नोनी तथा चण्डी, चौण्डा या चामुण्डा के प्रति अपनी श्रद्धा भावना प्रगट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए इसका धार्मिक महत्व अधिक है। इस नृत्य से स्थानीय लोगों का बहुत अधिक मनोरञ्जन भी होता है और उन्हें एकत्र होकर एक स्थान पर भोजन करने और आपसी वार्तालाप का अवसर भी प्राप्त होता है, इसलिए हम इसके सामाजिक महत्व को भी उपेक्षित नहीं कर सकते।

त्योहार के दिन से पहले उस क्षेत्र-लिगरी, कुण्डल, सोहल और ल्योण्डी आदि गाँव के लोग एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं। उनमें से जो भक्त लोग इस लोक नाच में भाग लेना चाहते हों वे पाजामा, ढीला कुर्ता, टोपी और घास की पूलें (घास का जूता) पहन कर तैयार हो जाते हैं। इसके साथ ही ये लोग अपनी कमर में लकड़ी की मझारन भी लपेट लेते हैं। इन भक्त लोगों का नेतृत्व एक प्रधान पुजारी करता है, जिसके एक हाथ में एक त्रिशूल होता है जबकि दूसरे हाथ में एक घण्टी होती है। पुजारी के पीछे एक चेला होता है। उसके एक हाथ में भी एक त्रिशूल होता है। और दूसरे हाथ में एक पीतल का पानी से भरा गड़बा होता है। उस गड़वे में शंगल नामक बूटी की पत्तिओं समेत शाखाएं डाली होती हैं। उसने लोहे की पेटी अपनी कमर में बांधी होती है, जिसके साथ भी शंगल बूटी टांगी होती है।

उस दल में एक उप पुजारी भी होता है जो अपने दाएं हाथ में एक कुल्हाड़ा उठाकर रखता है जबकि वह बाएं हाथ में त्रिशूल धारण करता है। इसके अतिरिक्त उस दल में एक अतिरिक्त चेला भी होता है जो प्रायः बाद में आकर शामल होता है।

प्रतिभागी नर्तकों में से एक के पास बांसुरी, दूसरे के नगाड़ा वाद्य यन्त्र, तीसरे के पास ढोल और चौथे के पास ध्वज होता है।

साँयकाल के समय इस प्रकार सज-धज कर और तैयार हो जाने के बाद वे सभी मिल कर एक धार्मिक लोग गीत गाना आरम्भ करते हैं जो विशेषतया ऊपर वर्णित कुल देविओं का स्तुतिगान ही होता है, तथा इसके साथ ही वे वाद्य यन्त्रों की गड़गड़ाहट के बीच धीरे-धीरे नाचना आरम्भ कर देते हैं। इनका यह नाच (सुहार) सभी पर्वतीय नृत्यों से भिन्न प्रकार का होता है। क्योंकि इस नृत्य में प्रार्थना द्वारा कुल देवी को प्रसन्न करने का भाव होता है इसलिए इसकी सभी मुद्राएं भक्तिभावना की अभिव्यक्ति देती हुई प्रतीत होती हैं। इस नृत्य में ढेकू आदि के समान गोल चक्र आदि न बनाकर सभी प्रतिभागी एक दूसरे के पीछे चलते हुए ही नृत्य करते चलते हैं। वे नाचते-नाचते प्रार्थना गीत भी गाते चलते हैं और मध्य-मध्य में जै चण्डी (जय चण्डी) जै माता (जय माता) आदि जय-जयकार बोलते चलते हैं। जैसे ही वे सब माता के मन्दिर या स्थान के आगे पहुँचते अपने नृत्य की गति को और तीव्र कर देते हैं और जोर-जोर से प्रार्थना गीत भी गाना आरम्भ कर देते हैं। इतने में प्रातः काल भी हो जाता है। उस समय पुजारी-चेला आदि देवी की यथा विधि पूजा अर्चना करके तथा मन्नत आदि की विधि-सम्पन्न करके मन्दिर के पुजारी द्वारा तैयार करवाया हुआ भोजन एक साथ करके अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं।

(ङ) सोहाड़ी लोक नाच

यह नाच भी जम्मू संभाग के पर्वतीय क्षेत्र में बड़ा लोक प्रिय है। विशेषतः जिला डोडा की किश्तवाड़ तहसील में इसका बड़ा ही प्रचलन है। वास्तव यह फसल-नृत्य है, क्योंकि जब किसान अपनी फसल काट कर किसी खुली जगह पर एकत्र करके उसे लम्बी-लम्बी लाठिओं या डंडों (स्थानीय भाषा में छिनियां) के साथ कूटने लगते हैं तो यह नाच आयोजित होता है।

कटी हुई फसल के ढेर के पास आकर पुरुष और महिलाएं बंट कर खड़े हो जाती हैं, अर्थात् एक ओर पुरुष और दूसरी ओर महिलाएं। ये दोनों समूह एक

दूसरे के आमने-सामने होते हैं। प्रायः सभी के बाजुओं में घूंघरू बंधे होते हैं। तब ये नृत्य की मुद्रा में अपने-अपने डण्डों के साथ इकट्ठी की हुई फसल को कूटने लगते हैं, और एक स्वर से सोहाड़ी लोकगीत भी गाते चलते हैं। उस समय सोहाड़ी गीत के साथ नृत्य की मुद्रा में एक साथ उठते हुए उनके घूंघरूओं वाले हाथों के डण्डे जब फसल की ढेर पर पड़ते हैं तो दृश्य बड़ा सुहावना हो जाता है। सोहाड़ी लोक गीत के कुछ बोल इस प्रकार हैं -

''सोहाड़ी सेइये रामा, भरे डरावे रामा'' इत्यादि

(रामराज्य कितना खुशहाल था जब किसान छोटे से खेत से भी एक 'खार'[1] भर उत्पन्न कर लेता था।)

गीत की पंक्तियां गाते हुए वे नृत्य की मुद्रा में कभी आगे और कभी पीछे हटते चलते हैं। और साथ-साथ अपने डण्डों से फसल भी कूटते चलते हैं। यह नाच सौराष्ट्र (गुजरात) के तपनी लोक नाच से बड़ी साम्यता रखता है। न जाने इस साम्यता में क्या रहस्य है?

(च) गोजरी-लोक नाच

जम्मू कश्मीर राज्य के जम्मू संभाग में मुख्यतः गुर्जर भी गद्दी जाति के समान एक घुमक्कड़ जाति है, यद्यपि अब सरकार द्वारा इन्हें रहने की सुविधाएं जमीन, घर बनाने के लिए ऋण आदि दिये जाने से इनमें से कुछ जगह-जगह स्थायी निवास बनाकर रहने लगे हैं। जो लोग इन सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाए हैं वे अभी भी घुमक्कड़ जीवन ही जी रहे हैं- अर्थात् गर्मिओं में अपनी भैंसों के साथ उन पर्वतीय क्षेत्रों में चले जाते हैं जहां या बर्फ हो या खूब सर्दी हो और सर्दिओं में मैदानी क्षेत्र में आकर किसानों के खेतों में डेरा डाल कर सर्दी के छः महीने काटने लगते हैं।

इन लोगों का रहन-सहन, खान-पान एवं पहरावा सब अलग-थलग प्रकार होता है। इस राज्य में सभी गूर्जर मुसलमान ही हैं। इनकी बोली को गोजरी बोली कहते हैं। इनके लोक गीत बड़े मधुर और चित्ताकर्षक होते हैं।

ये लोग अपना लोक नृत्य लड़के के विवाह या अन्य खुशी के समय प्रस्तुत करते हैं। इनका नृत्य यद्यपि बड़ा ही सादा या साधारण होता है तो भी उस में बड़ा

1. *कश्मीरी तौल (लगभग दो मन के करीब)*

जोश और तीव्रता होने के कारण दर्शकों के हृदयों पर विचित्र प्रभाव डालने वाला होता है।

नृत्य के समय गुर्जर लोक अपना पहरावा एक समान रखते हैं और अपने-अपने हाथों में लम्बी-लम्बी छड़ियां रखते हैं। नृत्य के समय पुरुष और स्त्रियां अलग-अलग समूह में बंट जाते हैं। और ढोल की थाप के साथ ही अपना-अपना नृत्य आरम्भ कर देते हैं।

गुर्जर स्त्रियों के नृत्य में एक विशेष प्रकार की कलात्मकता दृष्टिगोचर होती है। उनके पैरों के ताल में जो आकर्षण होता है उससे दर्शक भाव विभोर हो जाते हैं।

कई बार पुरुष और स्त्रियां परस्पर घुल-मिल कर एक चक्राकार स्थिति में आ जाते हैं और उसी स्थिति में नाचने लगते हैं। क्योंकि गुर्जर ऊंचे-लम्बे क़द के होते हैं, इस लिए उनका नाचना भी उसी प्रकार उछलने-कूदने वाला होता है। नाचते समय वे अपने डण्डों को भी उछालते चलते हैं। उनके बीच सम्मिलित स्त्रियां अपने ढंग से ललनोचित हाव-भाव प्रगट करती हुई नाचती हैं। इन दोनों के समिश्रण से बड़ा सुहावना दृश्य उपस्थित हो जाता है। पुरुष नाचते समय अपनी बुलन्द ध्वनि से 'हा-हा' और 'हू-हू' करते चलते हैं।

मध्यवर्ती प्रदेश के लोक नाच :-

जम्मू संभाग के मध्यवर्ती प्रदेश में ये लोक नाच प्रचलित हैं :-

1. फुम्मनी लोक नाच
2. चौकी लोक नाच
3. कीकली लोक नाच
4. धमच्चड़ा लोक नाच
5. डण्डारस लोक नाच
6. छज्जा लोक

जम्मू संभाग के मध्यवर्ती प्रदेश फुम्मनी लोक नाच का विशेष महत्व है। क्योंकि दूसरे शब्दों में यह मध्यवर्ती भाग कण्डी-प्रदेश भी कहलाता है इसलिए यहां के लोक नाच फुम्मनी को कण्डी-नाच भी कहते हैं।

यह लोकनाच मुख्य रूप से धार्मिक नृत्य है और इसीलिए इसका सीधा सम्बन्ध सुरगल देवता, गुग्गा देवता, मण्डलीक देवता, कालीवीर देवता और वासुकि नाग से है। वास्तव में कण्डी के लोग लोकदेवताओं के प्रति गहरी आस्था रखते हैं। जब कभी भी वे किसी भी प्रकार की आपत्ति से ग्रस्त होते हैं तो झट लोक देवताओं की शरण में चले जाते हैं। और अपनी श्रद्धा-भावना के साथ उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। यह आम धारणा है कि लोक देवता उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर उन्हें अवश्य वरदान देकर आपत्ति-मुक्त कर देते हैं। उनकी इस पूजा-आराधना में फुम्मनी लोक नाच अनिवार्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है। गुग्गा नवमी के त्योहार (जो कृष्ण जन्माष्टमी के दूसरे दिन होता है) पर तथा नागपंचमी के त्योहार पर गाँव के लोग 'गुग्याल' नामक धार्मिक जुलूस निकालते है। यह जुलूस 'गुग्गा' लोक देवता को रिझाने के लिए निकाला जाता है।

जुलूस में सबसे आगे रंग-बिरंगे झण्डे उठाकर कुछ श्रद्धालु लोग चलते हैं। उनके पीछे वे श्रद्धालु लोग होते हैं जो अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्र उठाए हुए होते हैं। और फिर सबसे पीछे नंगे पांव एक चेला (लोक देवता का पुजारी) होता है जिसके सिर पर लोक देवता गुग्गा की चौकी होती है। उसके भी पीछे फुम्मनी लोक नृत्य करते हुए श्रद्धालुओं का झुण्ड होता है।

फुम्मनी नृत्य करते समय नर्तक अपने दोनों उठे हुए हाथों की अंगुलियों से ऐसी चेष्टाएं करते हैं कि मानो फूलों की कलिआं खिलती हुई फूलों की आकृति में आ रही है। अपने हाथों की अंगुलिओं से ऐसी मुद्राएं बनाने के साथ-साथ वे अपने पैरों को भी नृत्यावस्था में ले आते हैं। ज्यों-ज्यों ढोल तथा अन्य वाद्य यन्त्रों की ध्वनि तीव्र होती चलती है त्यों-त्यों उनके हाथों और पैरों की नृत्य चेष्टाएं भी ज़ोर पकड़ती चलती हैं। इस प्रकार एक अत्यन्त सुहावना दृश्य उपस्थित हो जाता है। उस समय ढोल वादक अपने ढोल को बजाता हुआ इस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करता है-

"ढगे धिन ना/नक धिन/धिन नक ढगे धिन नक"

गुग्याल जुलूस देव पूजन के बाद गाँव के उन घरों में अवश्य जाता है जिनके यहां बालकों का जन्म हुआ होता है। घर में पहुँचते ही चेला नवजात शिशु को उठाकर नाचने लगता है और उसके साथ फुम्मनी नृत्य करते हुए शेष नर्तक भी बड़ी तीव्र गति से नृत्य करते हैं। उस समय चेला नवजात शिशु को फूल के समान खिलने का आशीर्वाद देता है।

(ख) चौकी लोक नाच :-

फुम्मनी नाच के समान यह नाच भी कण्डी क्षेत्र में बड़ा लोकप्रिय है। इस नाच की यह विशेषता है कि सभी धर्मों के लोग भेद-भाव भुलाकर इसमें सम्मिलित होकर नृत्य का आनन्द लेते हैं।

गाँव में जब किसान अपनी काटी हुई फसल का अनाज अलग करके अन्न का भण्डार कर लेता है तब सब से पहले वह क्षेत्रपाल के स्थान पर जाकर अनाज से तैयार किया हुआ भोजन वहां अर्पण करके श्रद्धावनत होता है। फिर वह उन्हीं पवित्र स्थानों में भण्डारा यज्ञ करके सहभोज का आयोजन करता है। कई बार यह भण्डारा-यज्ञ बहुत से किसान मिल कर भी आयोजित करते हैं।

जब भोजन तैयार हो जाता है तो कुछ नृत्य-प्रिय लोग उक्त देवस्थान के आगे सामूहिक नृत्य करते हैं। उस समय वाद्य यन्त्रों में ढोल और तुरही का प्रयोग किया जाता है। ध्यान योग्य है कि- यह नृत्य केवल पुरुषों के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। स्त्रियां उस समय केवल एक कोने में बैठकर गीत गाती रहती हैं।

(ग) कीकली लोक नाच :-

यह नाच केवल स्त्रियों विशेषत: युवा लड़किओं के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य के लिए किसी वाद्य यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती है। नृत्य के समय स्त्रियां/लड़कियां अनेक समूहों में बंट जाती हैं और तब एक स्त्री/लड़की दूसरी के आमने-सामने होकर एक दूसरी की अंगुलिओं को ज़ोर से जकड़ लेती हैं। और अपने-अपने सिरों को पीछे की ओर अकड़ा कर झुका लेती हैं और बड़े नाटकीय अन्दाज से कभी चक्राकार स्थिति में और कभी साधारण स्थिति में नाचना आरम्भ कर देती हैं। नाचते समय वे प्राय: इस गीत को मुख्य रूप से गाती हैं-

कीकली कलील दी
पग्ग मेरे वीर दी
दुपट्टा भरजाई दा
फेटे मुँह जुआई दा इत्यादि

(घ) धमच्चड़ा लोक नाच :-

यह नाच केवल स्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। यह नाच जम्मू संभाग में बड़ा लोकप्रिय है। यह लड़के के विवाह के अवसर पर ही प्रस्तुत किया

जाता है। विवाह के अवसर पर जब बारात घर से चली जाती है तो स्त्रियां लड़के के घर में एकत्र होकर बेतहाशा एवं बिना किसी अनुशासन के नाचना आरम्भ कर देती हैं। क्यों यह नृत्य अत्यन्त स्वतन्त्र स्वभाव का है, इसी लिए इसका नाम भी धमच्चड़ा है। नाचती हुई प्राय: यह गीत गाती हैं-

''मुंडे दी मा नच्चै, नच्चै तमाशा दस्सै।''

(लड़के की माता नाचे, और नाचती हुई तमाशा दिखाए।)

क्योंकि स्त्रियां रात भर जागरण करती रहती हैं, इसलिए उनका नृत्य तथा अनेक प्रकार के हास्य व्यंग्यत्मक तमाशे भी चलते रहते हैं। खेद है कि अब यह नाच लुप्त प्राय है।

डण्डारस लोक नाच :-

यह लोक नाच केवल पुरूषों, विशेषत: युवकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि यह नृत्य बड़ा ही सरल है, इसीलिए डुग्गर धरती में (जम्मू संभाग में) बड़ा लोकप्रिय है। यह नृत्य भी सर्वथा स्वतन्त्र और मुक्त स्वभाव का है। यह किसी भी खुशी और उत्सव के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है। विशेष कर विवाह जैसे संस्कार के समय तो इसे अवश्य ही प्रस्तुत किया जाता है। इसे प्रस्तुत करने के लिए न तो किसी विशेष पहरावे की आवश्यकता होती है और न ही विशेष तैयारी की। नृत्य में भाग लेने वाले १५ से २० व्यक्ति हाथ में छोटे-छोटे दो-दो डण्डे लेकर खुले स्थान में एकत्र होकर नाचने के लिए तैयार हो जाते हैं। नाचना आरम्भ करने से पहले नर्तक एक गोलाकार चक्र में स्थित होकर ढोल की थाप के आरम्भ होते ही नाचना आरम्भ कर देते हैं और नाचते समय एक दूसरे के सम्मुख होकर अपने-अपने डण्डों से अपने सहनर्तक के डण्डे पर चोट करते चलते हैं और ऐसा करते-करते अपने नृत्य मग्न कदमों को आगे बढ़ाते चलते हैं। इस नाच का अभी भी बड़ा प्रचलन है।

छज्जा लोक नाच :-

इस लोक नाच का सम्बन्ध जम्मू संभाग के प्रसिद्ध लोहड़ी त्योहार के साथ है। लोहड़ी का त्योहार मकर संक्रान्ति से एक दिन पहले होता है। इस त्योहार के समय लोग प्राय: तिल गुड़, तिल-शक्कर या तिल-चीनी के साथ निर्मित मीठी वस्तुओं के साथ अग्नि की पूजा करते हैं। गाँवों में हरिण लोक नाटक प्रस्तुत किया जाता है, जबकि जम्मू, कठुआ, उधमपुर एवं कठुआ जैसे नगरों में छज्जा नाच का बड़ा प्रचलन था, जो अब स्मृति शेष ही रह गया है।

आज से १५-20 वर्ष पहले जब उपर्युक्त नगरों में छज्जा नाच का प्रचलन था तब छज्जे के शौकीन युवक शिल्पियों द्वारा छोटे-बड़े अनेक प्रकार के छज्जे बनवाया करते थे। बड़े छज्जे तो इतने भारी होते थे कि उन्हें केवल हट्टे-कट्टे युवक ही उठाने का साहस कर सकते थे।

छज्जों के अनेक प्रकार होते थे। यह कारीगर छिल्पी पर निर्भर करता था कि वह कैसा छज्जा बनाता था। ये छज्जे बांस के छोटे-छोटे टुकड़े करके उन्हें कलात्मक ढंग से जोड़ कर तथा उन पर रंग-बिरंगे कागज तथा शिव, दुर्गा, राधा-कृष्ण तथा सीताराम आदि की मूर्तियां जड़ कर सुन्दर बनाया जाता था।

लोहड़ी त्योहार वाले दिन युवकों के गिरोह एक-एक ढोल वाले का प्रबन्ध करके नाचते-कूदते उन घरों में जाते थे जिनके घरों में या लड़कों का विवाह हो चुका हो या लड़कों का जन्म हुआ हो। ऐसे घरों के आगे या पास पहुँच कर वे एक गोलाकार चक्र बनाकर और छज्जे वाले को अपने मध्य रखकर नाचने लगते हैं। उनका नाच विशेषतः डण्डारस नृत्य ही होता है।

3. जम्मू संभाग के निम्न क्षेत्र के लोक नाच

जम्मू संभाग के निम्न क्षेत्र में केवल निम्नलिखित दो ही लोक नाच प्रचलित हैं-

(क) भांगड़ा लोकनाच

(ख) गिद्दा लोकनाच

वास्तव में इन दोनों लोक नृत्यों का आगमन पंजाब से हुआ होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। यद्यपि डुग्गर प्रदेश (जम्मू संभाग) के कुछ विद्वान इन नृत्यों को स्थानीय ही मानते हैं, परन्तु यह उनकी सरासर हठ धर्मी है। क्योंकि इन दोनों नृत्यों को पंजाब में बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त है, और इन का उद्‌गम और विकास उसी धरती पर होने के ठोस प्रमाण मिलते हैं, इसलिए ये पंजाब के ही नाच हैं। हां, जम्मू संभाग का सीमावर्ती प्रदेश पंजाब के साथ जुड़ा होने के कारण एवं इस सीमावर्ती क्षेत्र और पंजाब के सीमावर्ती क्षेत्र के लोगों में पारस्परिक सम्बन्धों के तथा अन्य सामाजिक व्यवहार के आदान-प्रदान के कारण भांगड़ा, गिद्दा आदि मनोरञ्जन के साधनों का आदान-प्रदान होना भी स्वाभाविक था। हां, पंजाब से आयातित इन नृत्यों पर जम्मू संभाग के इस सीमावर्ती क्षेत्र का स्थानीय प्रभाव पड़ने से इनमें डुग्गर की लोक संस्कृति की झलक अवश्य मिलती है, जिससे गिद्दे

को तो नहीं परन्तु भांगड़ा को 'डोगराभांगड़ा' कहते हैं। विशेषकर विश्वनाथ खजूरिया और सुरेन्द्र गण्डलगाल ने इस क्षेत्र के भांगड़े को 'डोगरा भांगड़ा' नाम दिया है। परन्तु यह क्योंकि मतभेद का विषय है, इस लिए हम इसे यहीं छोड़ कर आगे चलते हैं।

(क) भांगड़ा लोक नाच :-

लोक वार्ता अध्येताओं का मत है कि मध्यकाल में जब भारत में मुसलमानों का राज हो गया तो सूफी सन्तों का आना-जाना भी आम हो गया। जिनमें बुल्ले शाह, शाह हुसैन, सुल्तान बहु आदि प्रसिद्ध थे। भारत में सूफी लोग अपने डेरों में अपने शिष्यों द्वारा भांग का रस निकलवाकर पीकर इसके नशे की मस्ती में झूम कर नाचने लगते थे और उसी नाच में अपने इष्ट का ध्यान भी करते थे। धीरे-धीरे उनके नाच का नाम 'भांग रस' पड़ गया जो बाद में समय के साथ ध्वन्यात्मक परिवर्तन से पहले भंगर और बाद में 'भांगरा' या 'भांगड़ा' हो गया। परन्तु जहां 'भांग रस' नृत्य का सबन्ध धर्म या साधना पद्धति के साथ था वहां वह बाद में पूर्णतया सामाजिक नृत्य बन गया। आज भांगडे का सम्बन्ध धर्म के साथ बिल्कुल नहीं है। यह एक शुद्ध सामाजिक नाच है। वैशाख महीने की संक्रान्ति वाले दिन पंजाब और जम्मू संभाग में स्थान-स्थान पर मेले लगते हैं। उन मेलों में लोग बड़े उल्लास और खुशियों में भर कर भांगड़ा नृत्य प्रस्तुत करते हैं। उस समय क्योंकि 'रबी' की फसल पकने का भी समय होता है। अच्छी फसल होने पर किसान और भी अधिक प्रसन्न होता है और भांगड़ा करता हुआ झूमने लगता है।

भांगड़ा नृत्य करने वालों कीं मण्डली में १५ से २० तक नर्तक होते हैं। नृत्य के समय ये विशेष प्रकार का पहरावा पहनते हैं, जिसमें सिर पर पगड़ी विशेष प्रकार से बनाई हुई बास्काट, कुर्ता, विभिन्न रंगों वाला लाचा, बाएं या दाएं बाजू में बांधने के लिए रेशमी स्कार्फ होता है। पहले विशेष प्रकार से बनाया हुआ तिल्ला जड़ित देसी जूता भी भांगड़े वालों के पहरावे में सम्मिलित था, परन्तु अब इसके स्थान पर रबड़ के जूते ही पहनते हैं, क्योंकि देसी जूते से वे नृत्य ठीक प्रकार से नहीं कर पाते थे।

नृत्य के समय भांगड़ा-ढोल बजाने में दक्ष ढोली को ही ढोल बजाने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। नृत्य के समय सभी नर्तक एक खुले मैदान में गोल चक्र में खड़े हो जाते हैं और ढोल की गड़गड़ाहट भरी थाप के साथ एक दम हा-हा, हू-हू, हो-हो आदि ध्वनियां निकालते हुए नाचने लग पड़ते हैं। उस समय ढोल

के बजने से निकलने वाली ध्वनि लगभग इस प्रकार होती है-

'धिनका ना, धिनाल ना धिन'
धगन, धगन धा
तिन, तिन, तिन ... ता,
धिन-धिन टका धिन।'

नृत्य करते समय नर्तकों का हाथ उठाने का ढंग बड़ा विचित्र और आकर्षक होता है।

कहते हैं कि भारत-विभाजन से पहले जम्मू नगर में वैशाखी के त्योहार के आस-पास भांगड़ा नाच का बड़ा रिवाज था। जम्मू नगर में रणवीर नहर के किनारे पर रात के समय भांगड़ा दल के लोग इकट्ठे होकर भांगड़ा नाच प्रस्तुत किया करते थे। इसमें सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से लोक आया करते थे। पश्चमी पंजाब (अब पाकस्तान) के स्यालकोट और गुजरांवाला शहर तथा इनके आस-पास के गाँवों से भी लोग आया करते थे। स्थानीय लोगों का तो कहना ही क्या? इनकी संख्या तो हजारों में होती थी। कठुआ, सांबा, हीरानगर, उधमपुर आदि अनेक नगरों से आकर लोग जम्मू के भांगड़े का आनन्द लूटते थे। इससे ज्ञात होता है कि जम्मू का भांगड़ा बड़ा ही प्रसिद्ध था। सम्भवतः इसकी लोकप्रियता को ध्यान में रखकर ही लोक साहित्य पर काम करने वालों ने भांगड़ा नाच को जम्मू संभाग का ही नाच सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

(ख) गिद्दा लोक नाच :-

जिस प्रकार भांगड़ा पुरूषों का लोक नाच है उसी प्रकार गिद्दा महिलाओं का लोक नाच है। यह लोक नाच भी जम्मू संभाग के निम्न क्षेत्र पंजाब से ही आया है, यद्पि आजकल जम्मू संभाग के अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में इसे अवश्य सम्मिलित करके कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई जाती है।

इस नृत्य में आठ से दस तक महिलाएं सम्मिलित होती हैं। नृत्य के समय उनका पहरावा अत्यन्त आकर्षक होता है। वे कभी यह नृत्य दो दलों में विभक्त होकर करती हैं, जबकि कभी गोलाकार चक्र में आकर नृत्य करती हैं।

जहां भांगड़ा नाच के समय बड़ा हल्ला-हुल्ला और शोर-शराबा जैसा दृश्य होता है। दूसरे शब्दों में जहां भांगड़ा आक्रामक भाव का प्रदर्शन करता है, वहां ठीक इसके विपरीत गिद्दा अत्यन्त शान्त और मनमोहक दृश्य उपस्थित करके दर्शकों के

मन पर अपनी गहरी छाप बैठाता है। गिद्दा नाच की मुद्राएं और लय तथा ताल की गति इतनी आकर्षक होती है कि दर्शक देखते-देखते भाव विभोर होकर मानो अपनी सुध-बुध ही खो देते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि डोगरों की धरती जम्मू संभाग में लोक नृत्य की बड़ी समृद्ध वरासत है।

००००००